सितंबर 2025

अंक 6

अंतरदेश

सरहदों के पार हिंदी का संसार

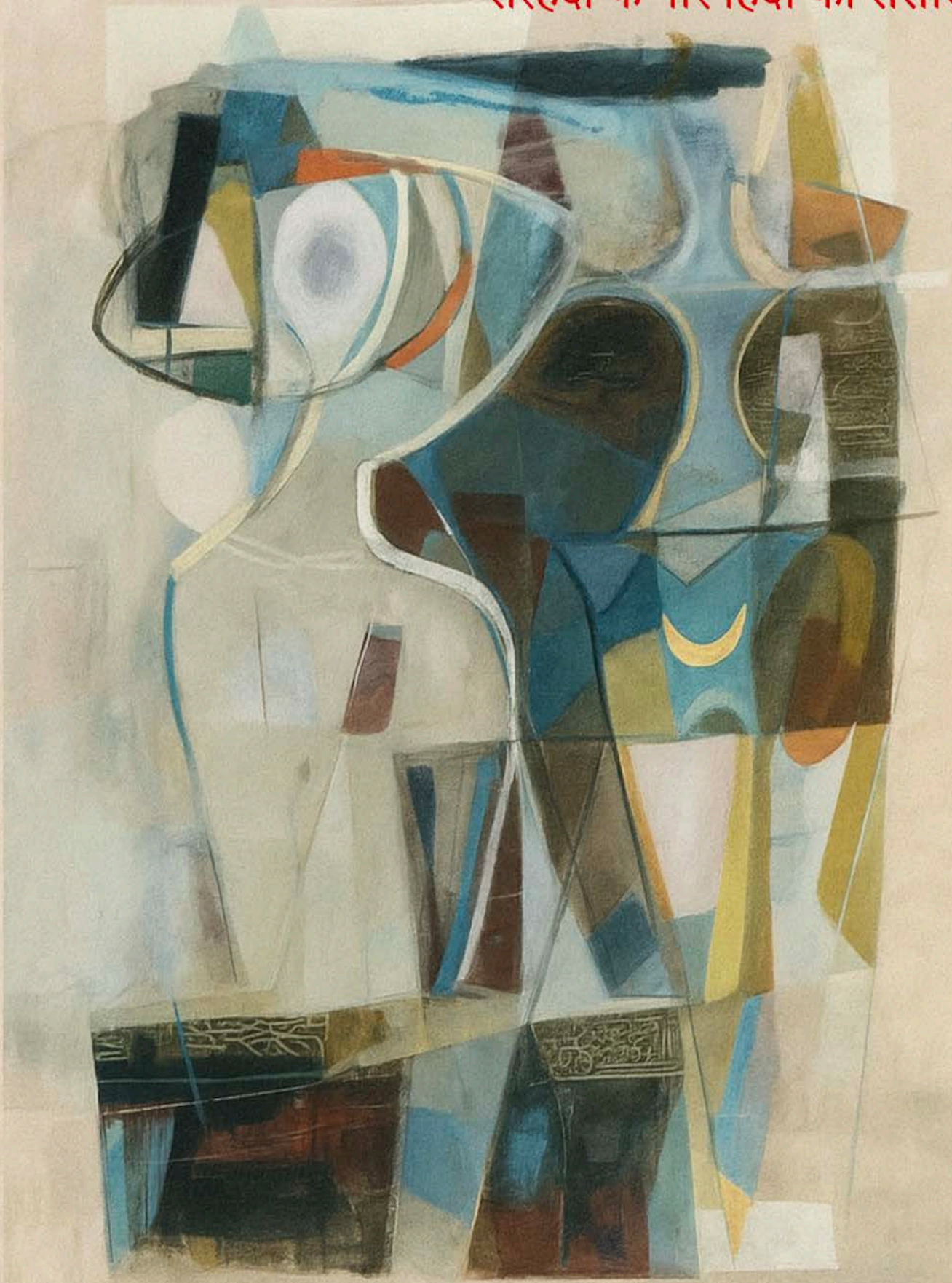

अंतरदेश

सरहदों के पार हिंदी का संसार

सितंबर 2025, अंक 6

संपादक

हंसा दीप

यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो, कनाडा

सहायक संपादक

वेदप्रकाश सिंह

ओसाका विश्वविद्यालय, जापान

परामर्श मंडल:

अडेलै हेनिश-टेम्बे, लाइप्त्सिग विश्वविद्यालय, जर्मनी
आनंद वर्धन शर्मा, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
एरिका करांति, तूरीन विश्वविद्यालय, इटली
दिव्यराज अमिय, त्युबिंगन विश्वविद्यालय, जर्मनी और ज़्यूरिख विश्वविद्यालय स्विट्जरलैंड
राम प्रसाद भट्ट, हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी
ली यालान, बीजिंग फ़ॉरन स्टडीज़ यूनिवर्सिटी, चीन
शिव कुमार सिंह, लिस्बन विश्वविद्यालय, पुर्तगाल

स्थायी संपर्क पता:

नॉटनल, स्वत्वाधिकार © 2024
16/1454, इंदिरा नगर, लखनऊ- 226016, उत्तर प्रदेश, भारत
antardesh.patrika@gmail.com

अंतरदेश से जुड़े क़ानूनी विवाद लखनऊ उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आएँगे। मौखिक और लिखित रचनाओं और कृतियों में व्यक्त विचार रचनाकारों के निजी विचार हैं, नॉटनल, संपादक और संपादक मंडल के नहीं।

अनुक्रम

- **संपादकीय** 4

आलेख

- फिल्म, नाटक, लेखन से समाज में विविध रंग भरती शख्सियत - विभा रानी – ज्योत्सना कपिल 7
- लोक संस्कृति पर विशेष – संजा का दरबार - विनय उपाध्याय 16
- भाषा और संस्कृति – भारतीय भाषाएँ संस्कृति की वाहक - शैलजा कौशल 23
- सिनेमा – विज्ञान और कला का अनोखा संगम - रेनू मंडल 35

कहानी

- लाठी - रत्नकुमार सांभरिया 41
- आँधियाँ – मुकेश कुमार दुबे 52
- फागुनी - अनिता रश्मि 61
- मराठी कहानी – पैसा – गौरी गाड़ेकर – अनुवाद – निवेदिता तिजोरीवाला 73
- गुजराती कहानी – दाह – गिरिमा घारेखान – अनुवाद – राजेंद्र निगम 80

कविता

- अगर लोहा न होता, शादी का घर, जिंदगी की शाम, होना न होना, रहने लायक जगहें - राम स्वरूप दीक्षित 86
- पंजाबी कविता - एन्टीने पर बैठी सोन चिड़ी, कहीं गया ही नहीं, पैरों तले जमीन - हरिभजन सिंह रेणु – अनुवाद - उर्मिल मोंगा 90
- दर्पण - यूरी बोत्विंकिन 93

संस्मरण

- समारोह की दुनिया तीन : नृत्य, श्रृंगार और भूख – प्रियंवदा पाण्डेय 94

हास्य-व्यंग्य

- डॉलर वाले बैंगन जी – नुपूर अशोक 98

लघुकथा

- तलाश, बदलते दृष्टिकोण, अहिल्या, खूबसूरती – उपमा शर्मा 101

हिंदी छात्र परिशिष्ट

- मेरे देश का त्योहार - सेत्सुबुन - नानामी योशिदा, क्योतो, जापान 106
- डायरी के पन्नों से – अधूरी गूँजें – भव्या, राँची, झारखंड 107
- याद कर लेता हूँ - उज्जवल शर्मा, टोरंटो, कनाडा 115
- हिंदी है अपनी पहचान - शौनक चटर्जी, मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया 116
- बुजुर्गों का मान - मायरा कुमार, सिडनी ऑस्ट्रेलिया 118
- समाज में नारी का स्थान - इप्शिता कुमार, सिडनी आस्ट्रेलिया 119
- जर्मन कहावत – पद्यात्मक अनुवाद - प्रेम रंजन अनिमेष, जर्मनी 121
- योग से हिंदी सीखने तक - वलभा उसमा, बैंकाक, थाईलैंड 122
- जलती कांगड़ी – आंद्रे सिमेयोन ब्रोइनिग, जर्मनी 124

नोट: चित्र गूगल से साभार

लंबी दूरी के रिश्ते

इसी माह चौदह सितंबर को हमने हिंदी दिवस मनाया। भारत में भी और भारत से बाहर भी। अपने देश से दूर रहना केवल भौगोलिक दूरी नहीं है, यह अपने भीतर निरंतर एक भय को भी ढोना है- भाषा और संस्कृति के लुप्त हो जाने का भय। शायद इसी वजह से हम हर तीज-त्योहार को और अधिक श्रद्धा से, पूरे उत्सवी माहौल के साथ परंपरागत शैली में मनाते हैं। मानो इस तरह हम उस खोती हुई पहचान को थोड़ी देर के लिए थाम लेने की कोशिश कर रहे हों।

लंबी दूरी को पाटने की असफल कोशिश के बावजूद हर रिश्ते की नींव को रोज-रोज हिलते देखना अब मजबूरी बन गई है। भाषा से रिश्ते, संस्कृति से रिश्ते, यहाँ तक कि अपनों से बने आत्मीय रिश्ते भी एक के बाद एक, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, बदलते, नए आकार लेते, अदृश्य होते चले जा रहे हैं।

हमारी पीढ़ी ने लंबी दूरी के रिश्तों को भी धैर्य और लगन से निभाया। लेकिन क्या अगली पीढ़ी भी ऐसा कर पाएगी, यह एक प्रश्न चिन्ह है। दूरियाँ संवादहीनता को बढ़ा देती हैं, और आज का वर्तमान, आने वाले कल तक पहुँचते-पहुँचते, इतिहास में बदलने को तत्पर रहता है।

हालाँकि तकनीक से समृद्ध इस दुनिया में हर किसी से संपर्क बनाए रखना भले ही आसान हो गया हो, बावजूद इसके, सब कुछ ऊपर-ऊपर-सा नजर आता है। “जस्ट ए

क्लिक अवे”, पूरी दुनिया जब उँगलियों के पोरों पर हो, तब भी इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता कि ये सब जितना आसान है, उतना ही औपचारिक भी। ठीक उसी तरह, जिस तरह हम विदेश में रहने वाले अपने पड़ोसी से बस मौसम की चर्चा करके ताला खोलकर अंदर चले आते हैं। फिर उसकी दुनिया और हमारी दुनिया के बीच एक अभेद्य लकीर खिंच जाती है।

हर त्योहार पर परिवार को साथ लेकर हमारी उत्साही आँखें, आने वाली पीढ़ी को बहुत कुछ कहने लगती हैं, समझाने लगती हैं। अपने में खोए बच्चे सिर्फ इसलिए हमारे साथ होते हैं क्योंकि माता-पिता का कहना मानने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं। उनकी उदासीनता स्पष्ट दृष्टव्य होने के बावजूद, उनका हमारे साथ बना रहना एक हल्की-सी आशा तो जगाता है, लेकिन धूमिल-सी आशा। मजबूत भय से लिपटी हुई।

फोन, लैपटॉप और आई पैड में सिमटी उनकी दुनिया एक स्पष्ट संकेत दे देती है कि उनके लिए वास्तविक जीवन का अर्थ कहीं और है। अपनी संस्कृति के बारे में उन्हें सिखाने की कोशिश उतनी ही दुरुह है जितनी घर के बुजुर्ग को तकनीक सिखाना। जीवन का सत्य है कि दो पलड़े ऊपर-नीचे होते हैं, लेकिन अब स्थिति ऐसी है कि एक पलड़ा आसमान छू रहा है और दूसरा जमीन से चिपका पड़ा है।

सिर्फ रुचियाँ ही नहीं, बल्कि सोच, आदतें, और जीवन जीने के तरीके भी अलग हो चुके हैं। हमारी पीढ़ी पाई-पाई बचाने वाली, और यह पीढ़ी खुले हाथों खर्च करने वाली। कल की परवाह बिल्कुल नहीं। जाहिर है, हम जो इकट्ठा करके छोड़ जाएँगे, वे उसे यूँ ही उड़ा देंगे। इसीलिए, बचाने का क्या फायदा, ये जानते हुए भी हम फिजूल खर्ची नहीं करते। अपनी आवश्यकताओं पर हमारा नियंत्रण इसलिए भी रहा कि जो कुछ हमने अपने जीवन में देखा वह ऐसा ही था। हम उसी कल को आज बना कर जीते रहे हैं। अतीत को छोड़ते ही

नहीं। एक ये हैं, नई पीढ़ी- इनका आज पूरी तरह अलग है। पीढ़ियों का अंतर पहले भी रहा पर इतना चुभता हुआ अंतर शायद कभी नहीं रहा।

इस पीढ़ी का मनोरंजन, दिनचर्या, रहने की शैली, कपड़े-लत्ते, सोशल मीडिया सब कुछ ऐसा है कि करो जरा-सा, दिखाओ बड़ा-सा। हमने बड़ा करके भी कभी दिखाया नहीं। आज का युवा हर जानकारी के लिए अंतरजाल पर निर्भर करता है। गणेश पूजा में अमिताभ बच्चन आरती करते हुए गा रहे थे, जब वही यूट्यूब पर लगा दिया, तब आरती में एक अलग ही उत्साह दिखा। हर परंपरागत पहलू ने नया मोड़ ले लिया है ऐसे में हमारी पीढ़ी का मौन रहकर समय के प्रवाह के साथ बहने के अलावा कोई दूसरा रास्ता बचा नहीं।

रोज की बकझक से बची-खुची आत्मीयता भी टूट सकती है। इसीलिए कल की चिंता न करके आज तो हम खुशी से जी लें। छोड़ दें उस चिंता को जो हमारे बस में ही नहीं। आज सुनहरा बनाएँ, आज को जिएँ। कल न कभी हमारा था, न है, और न रहेगा। जो हमारे हाथ में है, वह बस आज है। तो क्यों न इस आज को सुंदर बना लें? जो दिल को सच्ची खुशी दे, वही करें। बाकी सब प्रवाह में बह जाने दें। इसीलिए अपना कमाया खर्च करें, जिसमें खुद को खुशी मिलती है, वही करें। शेष की परवाह न करें।

आपने बिल्कुल सही सोचा, शब्दों में लिखना आसान है, करना बहुत मुश्किल है। फिर भी कोशिश तो की ही जा सकती है न। यही कोशिश मैं कर रही हूँ, इन पंक्तियों के जरिए अपने भीतर की सच्चाई बाहर रखकर। असलियत से आप वाकिफ हैं, इसीलिए मुस्कुरा रहे हैं। क्योंकि आप जानते हैं- हम चाहे जितना सोच लें, अंततः अपनी आदतों और संस्कारों के बंधन से बाहर निकलना आसान नहीं।

हम वही हैं, लकीर के फकीर, पर शायद यही हमारी सच्चाई है, और यही हमारी पहचान भी।

हंसा दीप, टोरंटो